

ब्र० दुलीचन्द जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं.—११



कविवर श्री वृन्दावनदासजी विरचित

श्री प्रवचनसार-परमागम



: संशोधक :

श्री नथूराम प्रेमी



: प्रकाशक :

ब्र० दुलीचन्द जैन ग्रन्थमाला

सोनगढ (सौराष्ट्र)

प्रथमावृत्ति वीर नि. सं. २४३५, सन् १९०८

द्वितीयावृत्ति वीर नि. सं. २५००, सन् १९७४

प्रतियाँ ११००

ब्र. दुलीचन्द्र जैन ग्रन्थमालाको देहली निवासी
श्रीमती कमलाबाई धर्मपत्नी श्रीलाला कृपारामजी
जैन द्वारा एक हजार रुपये ज्ञानप्रचार हेतु प्राप्त
हुए हैं; तदर्थ धन्यवाद!

मूल्य

२-५०



मिलनेका पता :

टोडरमल स्मारक भवन

ए-४ वापूनगर, जयपुर-३ (राज०)



: मुद्रक :

मगनलाल जैन

अजित मुद्रणालय

सोनगढ (सौराष्ट्र)

—: प्रस्तावना :-

[प्रथमावृत्तिसे]

पाठक महाशय ! लीजिये, श्री जिनेन्द्रदेवकी कृपासे हम आज बाराणसी निवासी कविवर वावू वृन्दावनदासजीका 'प्रवचनसार परमागम' लेकर उपस्थित हैं। इसका एकवार आद्योपान्त स्वाध्याय करके यदि आप अपनी आत्माका कुछ उपकार कर सकें, तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे।

इस ग्रन्थके मूल कर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् ४९ में नन्दिसंघके पट्टपर विद्यमान थे, पेसा पट्टावलियोंसे पता लगता है। आपके वनाये हुए ८४ प्राभृत (पाहुड) ग्रन्थ कहे जाते हैं, जिनमेंसे इस समय आठ-पाहुड उपलब्ध हैं। और पंचास्तिकाय, नाटक समयसार तथा प्रवचनसार ये तीन बहुत प्रसिद्ध हैं। इन तीनोंकी द्वितीय सिद्धान्तमें अथवा द्वितीय श्रुतस्कंधमें गणना है। और इनमें शुद्ध निश्चयनयको प्रधान मानकर कथन किया है। इस प्राभृतत्रयीमेंसे पंचास्तिकाय और नाटक समयसार छप चुके हैं। केवल प्रवचनसार रह गया था, सो आज यह भी मुद्रित होकर तैयार है। यद्यपि भाषा-वचनिका तथा मूल पाठके बिना इस ग्रन्थका सर्वांगपूर्ण उद्धार नहीं कहलायेगा तो भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि प्रवचनसार प्रकाशित नहीं हुआ है।

इस ग्रंथकी संस्कृतमें दो टीका^१ उपलब्ध हैं, एक ^२श्री अमृतचंद्रसूरिकी, ^३तत्त्वदीपिका टीका और दूसरी श्री जयसेनाचार्यकी

१. इन दोनों ही टीकाओंके छपनेका प्रबंध हो रहा है।

२. श्री कुन्दकुन्दाचार्यके तीनों ग्रन्थ पर श्री अमृतचंद्राचार्यकी टीकायें हैं और वे सब प्राप्य हैं। अमृतचन्द्राचार्य संवत् ९६२ में नन्दिसंघके पट्ट पर विद्यमान थे।

३. यह टीका वम्बई यूनीवर्सिटीने अपने एम. ए. के संस्कृत कोर्समें भरती की है।

टीका। इनमेंसे तत्त्वदीपिका टीकाके आधारसे आगरा निवासी स्वर्गीय पंडित हेमराजजीने विक्रम संवत् १७०९ में शाहजहाँ बादशाहके राज्यकालमें भाषा-वचनिका बनाई है। और इसी भाषा-वचनिकाके आधारसे काशी निवासी कविवर वृन्दावनजीने यह पद्यवद्ध टीका बनाई है। यह टीका उन्होंने संवत् १९०५ में अर्थात् आजसे ६० वर्ष पहले पूर्ण की थी।

कविवर वृन्दावनजीका जीवन-चरित्र और उनके ग्रन्थोंकी आलोचना हमने जैन-हितैषीके गतवर्षके उपहार ग्रन्थ वृन्दावन-विलासमें खूब विस्तारसे की है। इसलिये अब उनकी पुनरावृत्ति करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। जिन महाशयोंको पढ़नेकी रुचि हो, वे उक्त ग्रन्थ मँगाकर देख लें।

इस ग्रन्थको हमने दो हस्तलिखित प्रतियोंके अनुसार संशोधन करके छपाया है। जिनमेंसे एक तो कविवर वृन्दावनजीकी स्वयं हाथकी लिखी हुई प्रथम प्रति थी, जो हमें काशीके सरस्वती भंडारस्ते प्राप्त हुई थी और दूसरी करहल निवासी पंडित धर्म-सहायजीके द्वारा प्राप्त हुई थी। यह दूसरी प्रति भी पहलीके समान प्रायः शुद्ध है और शायद पहली प्रति परसे ही नकल की हुई है।

कविवर वृन्दावनजीकी लेखन-शैली आदिसे अन्त तक एक सी नहीं मिलती। उन्होंने एक ही शब्दको कई प्रकारसे लिखा है। मैं में, हैं हैं, तैं तैं तै, कै के, नहिं नहि नहीं, होहिं होहिं होहि, सों सों, त्यों त्यों, कह्यो कह्यौ, विपै विपैं विपैं, आदि जहाँ जैसा जीमें आया है इस प्रकार लिखा है। जान पड़ता है कि ऐसे शब्दोंके लिखनेका उन्होंने कोई नियम नहीं बनाया था, विकल्पसे वे सबको शुद्ध मानते थे। उनके लेखमें श, ष और स की भी

१ हेमराजजीने भी तीनों ग्रन्थोंकी भाषा-वचनिका बनाई है।

ऐसी ही गड़बड़ थी। जहाँ कविताके अनुप्रासादि गुणोंका कोई प्रतिबन्ध नहीं था, वहाँ उन्होंने शुद्ध शब्द पर ध्यान देकर आकारादिका प्रयोग नहीं किया है। सर्वत्र इच्छानुसार ही किया है। वर्तमान लेखन शैलीसे विरुद्ध होनेके कारण हमने ऐसे स्थानोंमें जहाँ कि तुकान्त अनुप्रासादिकी कोई हानि नहीं होती थी, शुद्ध शब्दोंके अनुसार ही शकार सकारका संशोधन कर दिया है। तें तें के के आदिके संशोधनमें कहीं कहीं मूल प्रतिके समान ही विकल्प हो गये हैं, तो भी जहाँ तक हमसे बन पड़ा है आदिसे अन्त तक एक ही प्रकारसे लिखा है।

कविवरकी भाषामें जहां-तहां पुलिगके स्थानमें खीलिगका प्रयोग किया गया है। सो भी ऐसी जगह जहां हमारे पाठकोंको अटपटा जान पड़ेगा। हमारे कई मित्रोंका कथन था कि, इसका संशोधन कर देना चाहिये। परन्तु हमने इसे अच्छा न समझा। ऐसा करनेसे ग्रन्थकर्ताके देशकी तथा समयकी भाषाका क्या रूप था, इसके जाननेका साधन नष्ट हो जाता है। संशोधन कर्ताका यही कार्य है कि, वह दो-चार प्रतियों परसे लेखकोंकी भूलसे जो अशुद्धियाँ हो गई हैं, उनका संशोधन कर देवे। यह नहीं कि, मूल कर्ताकी कृतिमें ही फेरफार कर डाले। खेद है कि, आजकल बहुतसे ग्रन्थप्रकाशक इस नियम पर विलकुल ध्यान नहीं देते हैं।

पहले यह ग्रन्थ मूल, संस्कृत टीका और भाषा-वचनिकाके साथ छपनेके लिये श्री रायचन्द्र जैन शास्त्रमालाके प्रबन्धकर्ताओंने लिखवाया था। परन्तु जब टीका तैयार न हो सकी और शास्त्रमालाके दूसरे संचालककी इच्छा इसे प्रकाशित करनेकी न दिखी, तब इसे पृथक् छपानेका प्रबन्ध किया गया। केवल गाथा और उनकी संस्कृत छाया देनेसे संस्कृत नहीं जाननेवालेको कुछ लाभ

नहीं होगा, पेसा सोचकर इसमें केवल मूल गाथाओंका नंबर दे दिया है। इससे जो लोग मूल ग्रन्थ तथा संस्कृत टीकासे अर्थ समझना चाहेंगे उन्हें लाभ होगा।

इस ग्रन्थकी टीकाओंमें प्रत्येक गाथाके प्रारम्भमें शीर्षकके रूपमें छोटी छोटीसी उत्थानिकायें हैं। यदि वे इसके साथ लगा दी जातीं, तो बहुत लाभ होता। परन्तु ग्रन्थके कई फार्म छप चुकने पर यह बात हमारे ध्यानमें आई, इसलिये फिर कुछ न कर सके। पाठकगण इसके लिये हमें क्षमा करेंगे। यदि कभी इसकी दूसरी आवृत्ति प्रकाशित करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो यह त्रुटि पूर्ण कर दी जायेगी, परन्तु जैनसमाजमें ग्रन्थोंका इतना आदर ही कहाँ है, जो ऐसे ग्रन्थोंकी दूसरी आवृत्तिकी आशा की जावे।

हम ऊपर कह चुके हैं कि यह ग्रन्थ मूल ग्रन्थका अनुवाद नहीं, किन्तु टीकाका पद्यानुवाद अथवा पद्यमयी टीका है। इसमें पंडित हेमराजजीकी वचनिकाका प्रायः अनुवाद किया गया है। कहीं कहीं तो वचनिकाका एक शब्द भी नहीं छोड़ा है। हमारी इस बात पर विश्वास करनेके लिये पाठकोंको तीसरे अधिकारकी २३ वीं गाथाकी कविता पंडित हेमराजजीकी वचनिकासे देखना चाहिये। वचनिकाके साथ इस अनुवादके दो-चार स्थान मिलाकर दिखाने और उनकी आलोचना करनेका हमारा विचार था, जिससे यह ज्ञात हो जाता कि कविवर वृन्दावनजीने मूल ग्रन्थके तथा टीकाओंके अभिप्रायोंको कहांतक समझकर यह अनुवाद किया है। परन्तु खेद है कि अवकाश न मिलनेसे यह विचार मनका मनमें ही रह गया।

इस ग्रन्थमें शुद्ध निश्चयनयका कथन है। इसलिये इस ग्रन्थके स्वाध्याय करनेके अधिकारी वे ही लोग हैं, जो जैनधर्मके निश्चय

और व्यवहारमार्गके मर्मज्ञ हैं। व्यवहार और निश्चयका स्वरूप समझे बिना इस ग्रन्थके पाठक अर्थका अनर्थ कर सकते । और उनकी वही गति हो सकती है, जैसी समयसारके अध्ययनसे बनारसीदासजीकी हुई थी। अतएव पाठकोंको चाहिये कि, नय-मार्गका भली भाँति विचार करके इसका स्वाध्याय करें, जिसमें आत्माका यथार्थ कल्याण हो ।

इस ग्रन्थके संशोधनमें जहाँतक हमसे हो सका है, किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं की है। तो भी भूल होना मनुष्यके लिये एक सामान्य बात है। इसलिये यदि कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों, तो विशेषज्ञोंको सुधार करके पढ़ना चाहिये। और हम पर क्षमाभाव प्रारण करना चाहिये। अलमतिविस्तरेण विज्ञेपु—

चम्बई
१०-१०-०८

सरस्वती सेवक—

नाथूराम प्रेमी

देवरी (सागर) निवासी

भक्तकवि वृन्दावनजी (डॉ. नरेन्द्र भनावत)

आपका जन्म सं० १८३८ माघ शुक्ला १४ सोमवार पुष्य नक्षत्रमें जि. शहाबादके चारा नामक ग्राममें हुआ था। आप गौयलगोत्री भगवाण थे। सं. १७६० में श्री वृन्दावन बारह वर्षकी अवस्थामें काशी आ गये थे। काशीमें काशीनाथ आदि विद्वानोंकी संगतिसे अध्यात्मिक और वैचारिक विकास हुआ। वे स्वभावसे संत एवं सरलताकी प्रतिमूर्ति थे। जीवनके अन्तिम वर्षोंमें भगवान्के प्रेममें इतनी तन्मयता थी कि बाह्य वेशभूषाकी परवाह नहीं रही। केवल एक कोपीन और चादरसे ही काम चलने लगा; पैरोंमें जूते भी न रहे।

पद्यानुवादः—कविमें अनुवादकी प्रतिभा थी। पन्द्रह वर्षकी

अवस्थासे ही उन्होंने श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित 'प्रवचनसार' का श्री अमृतचंद्रसूरिकी संस्कृत टीका तथा पांडे श्री हेमराजकी भाषा-टीकाके अनुसार पद्यानुवाद करना आरम्भ कर दिया था। यह मूल ग्रन्थका हूबहू अनुवाद है। कविश्रीने इस ग्रन्थके प्रणयनमें जितना परिश्रम किया उतना अन्य ग्रंथोंमें नहीं। इसे पहलीवार सं. १८६३ में प्रारम्भ कर सं. १९०५ में तीसरी बार पूर्ण किया। इस प्रकार इसमें कविकी ४२ वर्षोंकी साधनाका नवनीत और अनुभवका निचोड़ भरा गया है।

—डॉ. नरेन्द्र भनावत

—: अनुक्रमणिका :—

अध्याय	पृष्ठ
पीठिका	१ से ११
१. ज्ञानाधिकार	१२ से ५६
२. सुखाधिकार	५७ से ६७
३. ज्ञानतत्त्वाधिकार	६८ से ८४
४. ज्ञेयतत्त्वाधिकार	८५ से ११६
५. विशेष ज्ञेयतत्त्वाधिकार	११७ से १३८
६. व्यावहारिक जीव तत्त्वाधिकार	१३९ से १७४
७. चारित्र्याधिकार	१७५ से २०३
८. पकाररूप मोक्षमार्गाधिकार	२०४ से २६६
९. शुभोपयोगरूप मुनिपदाधिकार	२१७ से २३४
१०. पंचरत्न तत्त्वस्वरूप	२३४ से २३८
११. कवि व्यवस्था तथा वंशावली आदि	२३९ से २४२